आखर हिंदी पत्रिका ; e-ISSN-2583-0597 खंड 5/अंक 2/जून 2025
Received: 15/06/2025; Accepted: 20/06/2025; Published: 28/06/2025

स्वयं प्रकाश के निबंध

- डॉ. प्रतिभा प्रसाद
एसोसिएट प्रोफेसर
विभागाध्यक्ष, कुल्टी कॉलेज कुल्टी
ईमेल –pratibhaprasad439@gmail.com
मोबाईल. न- 8250425011

डॉ. प्रतिभा प्रसाद, स्वयं प्रकाश के निबंध, आखर हिंदी पत्रिका, **खंड 5/अंक 2/जून 2025**,(92-99)
https://doi.org/10.5281/zenodo.15767849

This work is licensed under CC BY-NC 4.0

निबंध को 'गद्य की कसौटी'1 मानने वाले निबंधकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे भाषा की पूर्णशक्ति मानते हुए इसके महत्व को रेखांकित किया है। निबंध विचारात्मक, भावात्मक तथा वर्णनात्मक ही क्यों न हो, इसमें भावों एवं विचारों का नयापन दिग्दर्शित हुआ करता है। कुछ विद्वानों के कथनानुसार "गद्य के विकास में निबंध की इतनी अधिक महत्वपूर्ण भूमिका है कि जीवन और साहित्य की अनेक समस्याओं को विचार और सौन्दर्यबोध के धरातल पर व्यक्त करते हुए वस्तुनिष्ठ और व्यक्तिनिष्ठ निबंधों की रचना की गयी है। गंभीर विषयों के साथ ही व्यापक रूप से ललित निबंध भी लिखे गये हैं। निबंधों को गद्य की कसौटी इसलिए कहा जा सकता है कि उनमें उन्मुक्त रूप से विचारों को व्यक्त करने की स्वतंत्रता होती है।"2 भारतेन्दु तथा उनके मंडल के निबंधकारों के निबंधों में रोचकता तथा नाटकीयता दोनों का समावेश मिलता है तो द्विवेदी जी के यहाँ आलोचनात्मक निबंध भाषा-संस्कार के साथ सम्पृक्त होकर प्रकाश में आती हैं। बालमुकुन्द गुप्त के 'शिवशम्भु का चिट्ठा' व्यंग्य की तीखी मारक क्षमता युक्त तात्कालीन राजनीतिक और राष्ट्रीय महत्व को उजागर करते दिखते हैं। पद्मसिंह शर्मा के निबंध तुलनात्मक-शैली, श्यामसुन्दरदास, मिश्र-बंधुओं ने समालोचनात्मक शैली को महत्व प्रदान किया। पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने निबंध की भावभूमि को छायावादी युगीन संवेदनाओं से जोड़ा। सियारामशरण गुप्त की निबंध शैली आत्मीयता युक्त थी । माखनलाल चतुर्वेदी, बनारसीदास चतुर्वेदी तथा गुलाबराय के निबंधों की शैली अपनी-अपनी खास विशेषताओं से युक्त होकर सतत् प्रवाहमान दिखाई पड़ती हैं

। आगे चलकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने निबंध को विशिष्टता प्रदान की। उनके निबंधों के विषय वैदुषिक ढंग के हुआ करते थे जबकि शैली लालित्यपूर्ण थी। शुक्ल जी के निबंध भाव या मनोविकार संबंधी हुआ करते थे या फिर सैद्धांतिक और व्यावहारिक । मनोविकार पर ललित शैली के निबंध लिखना कठिन कार्य था, परन्तु शुक्ल जी ने जीवन तथा साहित्य के मार्मिक प्रसंगों से जोड़कर इसे व्यंग्य-विनोद से युक्त कर दिया है। आगे चलकर ललित निबंधकार हजारीप्रसाद द्विवेदी के कालजयी निबंधों में सांस्कृतिक विरासत के साथ ही नवीन जीवनबोध, जिजीविषा का समावेश मिलता है। 'अशोक के फूल', 'कुटज' तथा 'कल्पलता' ऐसे ही उत्कृष्ट ललित निबंध- संग्रह माने जाते हैं। अज्ञेय के निबंध अनुभूति प्रधान हैं, जो 'त्रिशंकु', 'आत्मनेसपद' आदि हैं। निबंध लेखन में कहीं विचारात्मकता, कहीं भावुकता, कहीं सांस्कृतिकता दिखाई पड़ती है तो कहीं ललित निबंधों में रोचकता एवं लालित्य। प्रभाकर माचवे, विद्यानिवास मिश्र, धर्मवीर भारती, शिवप्रसाद सिंह तथा कुबेरनाथ राय जैसे निबंधकारों ने अपनी खास पहचान बनायी। ललित निबंध के साथ ही नये निबंधों में व्यंग्य की प्रमुखता दिखाई देने लगी। इसमें समाज तथा राजनीति की विसंगतियों पर प्रहार किया गया। हरिशंकर परसाई, लक्ष्मीकांत वर्मा, शरद जोशी, रविन्द्रनाथ त्यागी, नरेंद्र कोहली आदि व्यंग्य निबंधकार के रूप प्रसिद्ध हैं। अतः निबंध ने भाषा संस्कार एवं परिमार्जन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

निबंधों की इतनी सुविस्तृत, सुसंगठित विधा ने नये साहित्यकारों को भी प्रभावित किया। साहित्यकार विविध विधा में लिखते हुए भी निबंधों की ओर स्वतः ही आकृष्ट होते गये क्योंकि वहाँ उन्हें किसी दायरे में बंधकर नहीं बल्कि स्वच्छन्द रूप में अपने भावों एवं विचारों को व्यक्त करने का अवसर मिला है। विस्तृत तौर पर देखा जाए तो निबंध गद्य के विविध रूपों को स्वयं में स्थान देता है। यही कारण है कि ऐसा माना जाता है कि निबंधों ने हिदी गद्य के परिमार्जन और विकास का मार्ग प्रशस्त किया । इसने खड़ी बोली के मानक स्वरूप की रचना में अपनी महत्ता सिद्ध की। चाहे पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से इसने विस्तार पाया हो या फिर पुस्तकाकार रूप में; हिंदी गद्य के विकास में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका स्वीकार की गयी है। यही कारण है कि लेखकों का रुझान निबंध लेखन की ओर बना रहा। निबंध के माध्यम से विचारों का स्वतंत्र प्रवाह हृदय का पोर-पोर खोलकर रख देता है।

प्रसिद्ध कहानीकार स्वयं प्रकाश के निबंध 'एक कहानीकर की नोटबुक' लेखकीय विचारों एवं सरोकारों का वैचारिक दस्तावेज है। उनके इस निबंध में कहीं संस्कृति, तो कहीं सभ्यता के गम्भीर रहस्यों का बेबाक उद्घाटन हुआ है तो कहीं साधारण-से- साधारण विषयों पर गहरी वैचारिकी के साथ दो-दो हाथ करने की तीव्र छटपटाहट दिखती है। हिन्दू चिंतक, आस्तिक-नास्तिक के बीच गहरे द्वन्द्व के भाव तथा असहमति, आलोचना का साहस आज के युग की मांग होता चला जा रहा है। यही कारण है कि निबंधकार कहते हैं – "सभ्य समाज असहमति का सम्मान करते हैं और इसे मानसिक स्वास्थ्य और बौद्धिक स्वतंत्रता का लक्षण मानते है। असहमति की अनुपस्थिति रेजीमेंटेशन दमन और तानाशाही की सूचक होती है।"3 निबंधकार अपने निबंधों के माध्यम से छोटे- से –छोटे विषयों की पड़ताल करते दिखते हैं। वे भारतीय संस्कृति के मूल्य को कमतर कर आँकने पर आहत हैं। उनका मानना है कि हमारी संस्कृति और सांस्कृतिक विरासत काफी भव्य और उदार है। वह असहिष्णु नहीं है। उसने असहमतियों को भी खुले रूप में स्वीकारा है। संस्कृति के नाम पर जड़ होती परम्पराओं का

विरोध तथा उसके नाम पर ही स्वार्थ सिद्धि के खेल का पर्दाफाश करना ही लेखकीय प्रतिबद्धता दिखती है। सभ्यता किसी समाज की एक मजबूत इकाई हुआ करती है। यही कारण है कि सभ्यता, शिष्टाचार, अधिकार एवं कर्तव्यों पर अपनी गहरी और खुली अभिव्यक्ति करने से निबंधकार पीछे नहीं रहते । वे कहते हैं कि हम संस्कृति की बातें तो करते हैं परन्तु सभ्यता को भूल जाते हैं। शिष्टाचार केवल और केवल मात्र बच्चों को सिखाने और अनुपालन करने की चीज मानते हैं। हम बड़ों के लिए शिष्टाचार के कोई मायने नहीं होते। यही कारण है वे कहते हैं – "क्या हम वास्तव में सभ्य हैं? क्या यह सच नहीं है कि हम सड़क किनारे पेशाब करने खड़े हो जाते है या बैठ जाते है? या पान-गुटखा खाकर जगह-जगह पीक थूकते हैं? या ऊँची आवाज में टेप-डेक बजाते समय कभी नहीं सोचते कि पड़ोस के घर में कोई बीमार व्यक्ति भी हो सकता है जिसे इससे तकलीफ हो रही हो? क्या हम घर का कचरा सड़क पर नहीं फेंकते ? क्या हमारी व्यस्त सड़कों के बीचों बीच गाय नहीं बैठी खड़ी रहती? किसकी होती हैं ये गायें? क्या हम आवारा कुत्तों को नहीं खिलाते? क्या हम निठल्ले- निकम्मे और नाकारा व्यक्तियों को-बगैर मेहनत करवाये-भीख या दान नहीं देते ? क्या हमारे तीर्थस्थल भयानक गंदगी से पटे नहीं पड़े हैं ?"4 इस तरह के न जाने कितने सवाल निबंधकार ने हम सब के समक्ष खड़ा किया है। वे कहते हैं स्वतंत्रता केवल सुविधा नहीं जिम्मेदारी भी है। हम भारत के नागरिक सुविधाएँ तो लेना चाहते हैं परन्तु अपनी जिम्मेदारियों से मुकर जाते हैं। इसका कारण हमारी इच्छा शक्ति और जनचेतना का कम होना है। इस प्रकार के कई -कई प्रश्नों से निबंधकार हमें झकझोर देते हैं और हम सोचने को विवश होते हैं कि क्या हम सचमुच एक स्वतंत्र देश के जिम्मेदार नागरिक भी हैं या नहीं?

अपने विविधगामी सवालों,प्रश्नों को लेकर निबंधकार बार-बार हमसे टकराते हैं। निबंध को पढ़ते समय ऐसा प्रतीत होता है कि मानों उन्होंने अपने भीतर उठने वाली तरंगों को हम सबकी तरफ मोड़ दिया है। नास्तिकता एक जीवनशैली बन गयी है। हमारा आस्तिक और नास्तिक होना हमारी मानसिकता पर निर्भर होता है। वे कहते हैं – "नास्तिक वह नहीं जो ईश्वर को नहीं मानता। ईश्वर तो है करोड़ों मनुष्य की कल्पना में, भावना में, आस्था में, शिक्षा में, संस्कारों में और जीवन में भी। और जो है उसे नहीं मानने का तो कुछ मतलब ही नहीं।"5 उनका कहना था आस्तिक-नास्तिक होने से ज्यादा जरूरी और महत्वपूर्ण है - मनुष्य होना। सच को झूठलाकर मिथ्या को प्रश्रय देना; नास्तिकता की निशानी है। उनका यह भी मानना था प्रमाणहीन, तर्कहीन, अवैज्ञानिक, आस्तिकता या प्रमाणपुष्ट, तर्कपूर्ण और वैज्ञानिक नास्तिकता-समाज और जीवन के लिए ज्यादा प्रामाणिक है।

संस्कृति, सभ्यता आस्तिकता- नास्तिकता, शिष्टाचार आदि विषयों के साथ ही निबंधकार की चिंता 'कलाओं' को लेकर है क्योंकि वे कलाओं में लोकतंत्र के आने या प्रवेश करने को पतनगामी या समस्यामूलक षड्यंत्र मानते हैं। अब कलाएँ अर्थपूर्ण अनिवार्यता से बाहर निकलकर पाठपरक हो गयी हैं। छंद, अलंकारयुक्त कविता लिखना सबके बूते की बात नहीं रह गयी है क्योंकि पहले अर्थ की महत्ता थी, अब अर्थ (धन) की महत्ता हो गयी है। अब बड़े -बड़े और प्रशासनिक अधिकारी कवि हैं या कविता लिख रहे हैं। कलाओं में अभिजात्यता

बढ़ रही है। आजकल कलाओं की खोज 'रियलिटी शो' द्वारा की जा रही है। अब गायक की गायकी का आकलन साधारण जनता वोट देकर कर रही है। अब सवाल उठता है कि कला के मानदंड तय करने वाले कौन है? इसी बात को स्पष्ट करते हुए लेखक कहते हैं – "कलाओं का इतिहास इस बात का साक्षी है कि श्रेष्ठतम अनुकरणकर्ता भुला दिए गए और नई राहों के अन्वेषी अपने तमाम कच्चेपन के बावजूद कला का मुहावरा बदलने में, अपने लिए एक नया मुकाम बनाने में और इतिहास में अपना नाम दर्ज कराने में कामयाब हुए। यदि लता मंगेशकर,शमशाद बेगम जैसा ही गाती रहतीं या अवनींद्रनाथ और यामिनी राय, राजा रवि वर्मा जैसे ही चित्र बनाते रहते या निराला और मुक्तिबोध दोहा, सोरठा और छप्पय में लिखते रहते तो? निर्मल वर्मा और रेणू की नकल करने के चक्कर में कितने लेखक बर्बाद हुए हैं, इसकी कोई गिनती नहीं है।"6 कलाओं के ऐसे हश्र के पीछे आलोचना की अनुपस्थिति है।आलोचना और आलोचक को आज के बाजार ने पंगु बना दिया है। उन्हें चिंता इस बात की नहीं है कि आलोचना की अनुपस्थिति है बल्कि चिंता इस बात की है कि गुणीजनों ने स्वयं को बाजार के अधिनस्थ कर दिया है। उनकी बदत्तमिजियों को चुपचाप बर्दाश्त करने के सिवाय और कोई रास्ता बचा हुआ दिखाई नहीं देता है।

निबंधकार ने अपने निबंधों में वर्ग और लिंग जैसा कोई विभेद नहीं छोड़ा है। वे स्त्री जाति विषयक मानसिकता का आकलन करते हैं। वे मानते हैं कि हमारे कलाओं ने ही स्त्री को कभी स्त्री बनने ही नहीं दिया। उसे मनुष्य भी नहीं समझा गया। उसके साथ मानवीय व्यवहार करना तो दूर उसकी बारम्बार परीक्षा ली गयी। महाभारत और रामायण इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। द्रोपदी और सीता का सम्पूर्ण जीवन ही संघर्षपूर्ण या आत्मचेतना शून्य बना दिया गया । आज औरत की भीतरी हृदय से कहीं अधिक हाड़- माँस की सुंदरता महत्व पाती दिखती है। उसके धड़कते हृदय को संवेदनाशून्य बना दिया है। आज भी वह पत्रिकाओं के फ्रंटपेज पर अर्द्ध नग्न दिखाई पड़ती हैं किन्तु निबंधकार यह भी कहते हैं कि आज की स्त्री पहले की स्त्रियों से ज्यादा सजग और आत्मनिर्भर भी हुई हैं। अब उसकी छवि 'डीग्लैमराइजेशन' के दौर से गुजर रही है। उसे सजीव व्यक्ति का दर्जा दिया गया है। उनका कहना है – "अब आप औरत के बारेमें सोचते समय आँख-कान-नाक स्तन-नितंब को भाषा में नहीं सोच सकते। यह एक क्रांति है जो ठीक उस समय में घटित हो रही है जिसमें हम हैं। हम भाग्यशाली है कि हम इस मानसिक बदलाव के साक्षी ही नहीं, हिस्से भी हैं।"7 निबंधकार की वैचारिकी न सिर्फ स्त्री केन्द्रित रही बल्कि साहित्य, साहित्यकार एवं बाल जीवन के विविध पक्षों पर बात करने और उसके भीतर छिपे कारणों की गहरी पड़ताल निबंधों में दिखाई देती है। हिन्दी साहित्य के भविष्य तथा आगे आने वाली पीढ़ी को लेकर निबंधकार की चिंता बिल्कुल जायज लगती है। उनके द्वारा उठाए गए विषय मानों हमें सोचने के लिए विवश करते हैं कि यदि हमारी संस्कृति तथा साहित्य के उज्ज्वल पक्षों पर प्रकाश न डाला जाए तो आगे आने वाली पीढ़ियों का कल संवरने की बजाए बिगड़ने लगेगी। टी. वी. और बच्चे, बच्चों के बारे में कुछ बेतरतीब नोटस ,भविष्य का बाल-साहित्य जैसे विषयों के माध्यम से निबंधकार बालमन की सूक्ष्म परतों को खोलने के साथ ही उनकी साहित्यिक समझ विकसित करना भी अपनी नैतिक जिम्मदारी है। टीवी के माध्यम से परोसी जाने वाली क्रूरता, बर्बरता, हिंसा, अमानवीयता, भूख, अपमान हमारी पीढ़ी या बच्चों को कहाँ ले जा रही हैं। इसकी चिंता बार बार निबंधकार को झकझोर देती हैं। टी. वी में दिखाई जाने वाले अर्धसत्य को बच्चों का कोमल मानस सत्य

मान बैठता है। वे चरित्र जो काल्पनिकता का आवरण ओढ़े रहते हैं वे वास्तविक से प्रतीत होते हैं और उनके जीवन की दिशा ही नहीं बदलती बल्कि उनकी मानसिकता भी बदल जाती है। यही कारण है कि आज के बच्चों के सपने अकूत हैं और क्षमताएँ शून्य । माँ-बाप जाहिल, गँवार हैं और वे माडर्न हैं।

निबंधकार आज की पीढ़ी को लेकर बड़े चिंतित हैं। अपनी चिंता व्यक्त करते हुए वे कहते हैं – "उपभोग उन्हें अधिकार लगता है और मितव्ययिता मूर्खता। सादगी पाखंड और सदाचार, पिछड़ापन।"8 निबंधकार टी.वी. पर ही सारी गलतियाँ मढ़ने के मूड में नहीं दिखलाई देते। वे हमें सारी सच्चाई से परिचित करवाते हैं और कहते हैं कि टी. वी. का अंधाधुंध विरोध करना मेरा मकसद नहीं है बल्कि हम अभिभावकों का भी यह दायित्व है कि हम अपने आचरण और समझदारी के द्वारा बच्चों के साथ दोस्ताना और संस्कार युक्त सम्पर्क कायम करें ताकि इस प्रकार की काल्पनिक दुनिया की वास्तविकता से वे परिचित हो सकें और टी.वी के प्रभाव को निरस्त कर सकें अन्यथा हमारी पीढ़ी हमसे ही दूर होती चली जाएगी। वे अपनी चिंता व्यक्त करते हुए कहते हैं - "इस सूरतेहाल में सादगी का स्थान विलासिता ने सार्थकता का स्थान सफलता ने, श्रम के संगीत का स्थान उपभोग के स्वाद ने, स्थिरता का स्थान क्षणवाद ने, सुन्दरता का स्थान स्मार्टनेस ने, ज्ञान का स्थान सूचना ने, विद्वता का स्थान चालूपन ने, योग्यता का स्थान तिकड़म ने, स्वास्थ्य का स्थान चमक-दमक ने, सहभागिता का स्थान स्पर्धा ने, बचत का स्थान निवेश ने और सामूहिकता का स्थान इकलखुरेपन ने ले लिया है। यह एक बहुत बड़ा वेल्यूशिफ्ट (मूल्य-संतरण) है जो हमारे बावजूद और हमारे देखते-देखते हमारे समाज में घटित हो गया है।"9 इसी चिंता ने लेखक को इस आने वाली खतरनाक स्थिति के प्रति सोचने के लिए विवश किया है। भारत में जहाँ दोना-पत्तल, दाल-भात, साग-भात, नीम-पीपल है वहीं इंडिया में पीज्जा-बर्गर-हर्बल-इथेनिक। अतः भारत को बचाने की जरूरत महसूस हो रही है।

इसी प्रकार निबंधकार की चिंता उनके निबंधों की मूल शक्ति है। समाज, सभ्यता, साहित्य एवं संस्कृति के समान ही कलाओं में संगीत, नृत्य, चित्रकारी, कविता, भाषा और शास्त्र ही क्यों न हो; सभी में समान लोकतंत्र की हिमायत की है। साथ ही आज जिस तरह से गीत, संगीत, नृत्य को इंडियन आइडल, इंडियाज बेस्ट, सारेगामापा, फेम गुरुकुल, वॉयज ऑफ इंडिया जैसी टेलेन्ट शो कलाओं को ह्रास की ओर लिए जा रही हैं। वे कला के विकास के लिए अनुकरणकर्ता होने की नहीं बल्कि नये राहों के अन्वेषी होने की जरूरत पर बल देते हैं और इतिहास के मुहावरे को बदलने की नया मुकाम हासिल करने की और इतिहास में अपना नाम दर्ज कराने को ही कामयाबी मानते हैं। उनका मानना है कि आज हमारे भीतर आलोचना करने की शक्ति और सामर्थ्य नहीं रही। गुणीजन, बुद्धिजीवियों और समाज के प्रबुद्ध लोगों को अपने सामर्थ्य और आलोचना शाक्ति का एहसास होना आवश्यक है अन्यथा इसी प्रकार कलाओं के विकास की आड़ में कलाओं का विनाश तथा कुसंस्कारग्रस्ता स्थान बनाती चली जाएगी।

इसी प्रकार संगीत के बिगड़े स्वरूप तथा गायकी की जगह रीमिक्स के बदलते स्वरूप को देखकर निबंधकार आहत होते हैं और कहते हैं कि अधिकांश रीमिक्स सातवे-आठवें दशक के गीतों के ही बनाए जाते हैं

क्योंकि उनकी लोकप्रियता और स्वीकार्यता आज की संगीत से कहीं अधिक है क्योंकि हमारी नयी पीढ़ी अतीत की मिठास और आधुनिकता के नये तेवरों को एक साथ अनुभव करना चाहती है। वे मानते हैं स्थिरता और जड़ता का गहरा संबंध हुआ करता है। अत: नये के द्वार खोले रखना ही स्वतंत्रता और अस्मिता की पहचान है। वे कहते हैं “शुद्धतावाद और यथास्थितिवाद जब किसी भी क्षेत्र में नहीं चलता तो संगीत में भी क्यों चलेगा?” कलाओं के प्रति विशेष विशेष सम्मान निबंधकार की आंतरिक तृप्ति को दर्शाता है।

हिन्दी साहित्य में लुप्त होती विद्याएँ, कल का भारत और हिन्दी की स्थिति, कहाँ गुम हो गई व्यंग्य की परम्परा? कहानी कैसे बनती है, आज की हिन्दी कहानी के बारे में, वह अन्वेषक झूठ का, प्रेमचंद की परम्परा का सवाल, आखिर हिन्दी नाटक कहाँ चला गया? आदि निबंध हिंदी और उससे जुड़े भविष्य की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं कि व्यंग्य की परम्परा और हरिशंकर परसाई जैसे अन्वेषक की कमी खलती है। पहले व्यंग्यकार अपनी बेवाकपन के लिए जाने जाते थे परन्तु अब इसके लिए स्पेस ही नहीं बचा। अब व्यंग्य का स्थान आक्रोश और गालियों ने ले लिया है। पहले लोग हँसने के लिए व्यंग्य रचनाएँ पढ़ते थे अब हंसने के लिए लार्फिंग क्लब ज्वॉइन करना पड़ता है। रचनाकार के अनुसार व्यंग्य करने के लिए बूते में दमखम का होना आवश्यक है। वे मानते हैं कि - “सच कहने का हौसला सच सुनने का माद्दा भी पैदा करता है।”10 परसाई जी स्वयंप्रकाश जी के काफी चहेते थे अर्थात् उनकी बेवाक बयानी के कायल थे। परसाई जी आडम्बरहीन थे। यही कारण है कि निबंधकार कहते हैं “परसाई न खुद कोई नकाब पहनते हैं न दूसरे को पहनने देते हैं।। उनका तो जैसे मिशन ही हो जाता है सबकी नकाब उतारना। इसलिए जब वे छोटी-छोटी बेइमानियों, चतुराई, स्वार्थलोलुपता को उघाड़ देते हैं तो पढ़ने वाला एकदम उनका मुरदी हो जाता है।”11 स्वयंप्रकाश के लिए साहित्य जगत के दो साहित्यकार परसाई और प्रेमचंद अनुकरणीय थे क्योंकि परसाई जी स्वयं को सत्यान्वेषी नहीं झूठान्वेषी मानते हैं। प्रेमचंद की परम्परा के असली वारिस के सवाल पर विचार करते हुए-“वे कहते हैं इस परम्परा में राहुल सांकृत्यायन से लेकर संजीव तक के रचनाकार इनकी परम्परा में है परन्तु प्रेमचंद की परम्परा के होने का अर्थ यह नहीं कि वे केवल यथार्थवादी थे बल्कि प्रेमचंद की परम्परा से जुड़ना सिर्फ यथार्थवादी होना नहीं है। प्रेमचंद की परम्परा से जुड़ना मानवतावादी होना भी है, आधुनिक होना भी है, वैज्ञानिक होना भी है। यह सम्पूर्ण व्यक्तित्वान्तरण है। यह एक बेहतर इंसान होना है। इसके लिए गहरे आत्ममंथन और आत्मलोचन की जरूरत पड़ेगी।”12 प्रेमचंद मानो उनके आदर्श हों। प्रेमचंद की परंपरा आज भी अपने आधुनिक स्वरूप में दिखाई पड़ती है।

हिंदी कहानी की वर्तमान स्थिति पर विचार प्रकट करते हुए स्वयंप्रकाश जी ने उसके बदले स्वरूप को संजिदगी के साथ उभारा है। कहानी के स्वरूप में बदलाव आज के समय की माँग बन गयी है। समाज तथा मानवजीवन में होने वाले परिवर्तनों ने घोर परिवर्तन को जन्म दिया है। निबंधकार इस परिवर्तन को स्वीकारते हुए कहते है – “बचत का स्थान निवेश ने, संयम का स्थान उपयोग ने, सादगी का स्थान दिखावे ने, स्वास्थ्य का स्थान सौन्दर्य ने, सहनशीलता का स्थान आक्रामकता ने, धैर्य का स्थान त्वरित परिणाम की अपेक्षा ने, सार्थकता का स्थान सफलता ने, सहयोग का स्थान प्रतिस्पर्धा ने और सामूहिकता का स्थान इकलखुरेपन ने ले लिया। यह मूल्य संतरण (वेल्यू शिफ्ट) हमारे देखते-देखते ही हो गया है।”13 अब तो सफलता के तीसरे-चौथे, दसवें-बीसवें

संस्करण नहीं छपते। अब कोई मुद्दा राष्ट्रीय मुद्दा नहीं बनता अब सारे मुद्दे अखबार और न्यूज चैनल की टी.आर.पी. को प्रभावित करने को लेकर बनते हैं। राजनैतिक स्वार्थ के कारण मुद्दों को हवा देते हैं। अब कोई राजनीतिक दल राष्ट्रीय नहीं रहा – विचारधारा, सिद्धांतों और निष्ठा का लोप होता चला जा रहा है। अब वही होता है जो अमेरिका चाहता है और अमेरिका वही चाहता है जो बाजार चाहता है। इस माहौल में हिन्दी कहानी लिखना चुनौती भरा हो गया है। व्यवसायिक पत्र-पत्रिकाएँ कहानीकारों को बाजार के सम्मुख ला खड़ा कर दिया है। अब लेखक की गुणवत्ता उसकी बाजारवादी संस्कृति पर खरा उतने से आँका जाने लगा है। चित्रकारी की गुणवत्ता उसकी नीलामी में है। अतः आज गुणवत्ता नहीं बल्कि मार्केटिंग पर सबकुछ निर्भर है। पहले कहानी के पात्र किसान-मजदूर -निम्नवर्ग हुआ करते थे, अब इन पात्रों की जीवन गाथा सुनने का अवकाश भी हमारे पास नहीं है। निबंधकार के शब्दों में इनकी कहानियों में किसान-मजदूर, सर्वहारा दिखाई देना बंद हो गए हैं। इनकी कहानियों में चरित्र नहीं है, पात्र हैं। इसमें कथ्य नहीं है , सिर्फ शिल्प के करतब हैं, अदाएँ हैं, भाषिक लटके हैं। इसमें प्लाट नहीं है, घटनाएँ नहीं हैं, मनोगत हलचल और प्रलाप है। इसमें देश की जनता के दुःख-दर्द, आशा-आकांक्षा उसके जीवन का सच और उसके सपने नहीं हैं – घटिया और कामुक रीतिवाद है।"14 निबंधकार इस बात पर सहमत है कि आज की हिन्दी कहानी मुख्य रूप से नव्य साम्राज्यवाद या भूमंडलीकरण वैश्वीकरण के कारण ही अपना स्वरूप बदलती चली जा रही है। आज का समाज साम्प्रदायिकता, विद्वेष, कट्टरता, हिंसा, उपभोक्तावाद, आतंकवाद से ग्रसित हो गया है। अपने स्वयं को सुरक्षित करना है तो स्वभाषा, देसीभाषा के प्रति तीव्र आकर्षण आवश्यक है। अपनी 'स्वत्व शिक्षा' के लिए अपनी स्व की तलाश आवश्यक है। हिंदी कहानी की वही परम्परा आगे दिखाई देती है जिससे जीवन जगत् को प्रभावित किया जा सकता है।

'कल का भारत और हिंदी' नामक लेख में निबंधकार ने हिन्दी भाषा के भविष्य को लेकर महत्वपूर्ण विचार विमर्श किया है। हिंदी को राजभाषा बनाना और दूसरी भारतीय भाषाओं को कमतर करके आँकना हिंदी के भविष्य के लिए काफी घातक सिद्ध होता जा रहा है। हिंदी भारत की अधिसंख्यक जनता बोलती और समझती है । विश्व बाजार को हिन्दी की जरूरत हैं जिससे उसके उत्पाद ज्यादा-से-ज्यादा लोगों तक जा सके, पहुंच सके । आज हिन्दी में अंग्रेजी और अंग्रेजी में हिंदी का मेल ज्यादा ही होता चला जा रहा है। भाषा के द्वारा विचारशून्यता को धीरे-धीरे मनुष्य जीवन का अंग बना दिया गया है। निबंधकार कहते हैं - "खतरा यह है कि यह भाषा देखने-पढ़ने सीखने वाले बच्चे न शुद्ध हिन्दी लिख पाएँगे न शुद्ध अंग्रेजी । जबकि विचार की भाषा तो शुद्ध हिंदी ही रहेगी या फिर शुद्ध अंग्रेजी अतः वे उपभोक्ता तो बन जाएँगे, पर विचार से कट जाएँगे और इसलिए विचारशून्य उपभोक्ता बनेंगे और ऐसे ही उपभोक्ता तो बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को चाहिए।"15 लेखकीय चिंता पूरी तरह से सही और जायज है। पूरा संसार ही मानो बाजार बन गया हो। विचार की जगह शून्य भाव बोध ने जड़ें जमा ली है। जस्सी के सफल चरित्र को केंद्र कर वास्तविक चरित्र का अवास्तविक हो जाना सवाल और प्रश्न खड़े कर देता है। अतः विचार प्रश्नों के उत्तर खोजने की कोशिश करते हैं । प्रसंगवश आयीं कुछ बातें जीवन को झकझोर देती हैं । विविधगामी प्रश्नों के साथ ही उन्होंने लेखक संगठनों की अप्रासांगिकता पर भी सवाल उठाए हैं।

'निबंध' कथाकार के अनसुलझे सवालों का पिटारा बन कर हमारे समक्ष उपस्थित हुआ है। वैचारिक दृष्टि से लेखक की चिंताओं ने स्वर पाया है। रंगकर्म, लोकजीवन, साहित्य एवं जगत के साथ-ही बालमन की

गहरी पड़ताल इसकी धरोहर है। निबंधों को विवेचनात्मक, वर्णनात्मक, रोचक तथा सारगर्भित शैली में प्रस्तुत किया गया है । विषयगत गाम्भीर्य तथा बेबाक बयानी ने निबंधों के संसार को और भी वास्तविक बना दिया है। कुल मिलाकर निबंध में निबंधकार की वैचारिकी अपने उच्चतर स्वरूप में सामने आयी है।

संदर्भ सूची:

1. शुक्ल, रामचंद्र-हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्रका.-सं.2025, पृ.-276
2. सं. मिश्र, राजेन्द्र / राठौर, देवी सिंह – निबंध और विविध गद्य, तक्षशिला प्रकाशन, सं.-2005, पृ.-16
3. प्रकाश स्वयं- एक कहानीकार की नोटबुक, अंतिका प्रकाशन, सं.-2010, पृ.-10
4. वही, पृ.-37-38
5. वही, पृ.-19
6. वही, पृ.-25
7. वही, पृ.-42
8. वही, पृ.-31
9. वही, पृ.-29-30
10. वही, पृ.-74
11. वही, पृ.-92
12. वही, पृ.-127
13. वही, पृ.-86
14. वही, पृ.-88
15. वही, पृ.-70

****